चिल्ड्रन प्रेस सर्विस बुलेटिन

वर्ष - २ | अंक - १ | पृष्ठ संख्या - १२ | प्रकाशनार्थ नई दिल्ली, जनवरी २००७

प्रधान संपादक
हसरत अर्जुमन्द

संपादक
आशेन्द्र सिंह

सलाहकार मंडल
के. कन्नन
गजेन्द्र नौटियाल
उमेश कुमार
बिभास

संपर्क पता
चिल्ड्रन प्रेस सर्विस बुलेटिन
c/o ग्रासरूट्स मीडिया इनीशियेटिव
प्रथम तल, रेल आरक्षण बिल्डिंग
५० ए, स्ट्रीट १७, ज़ाकिर नगर, ओखला
नई दिल्ली - ११० ०२५
दूरभाषः ०११-२६६८३४४६, २६६३५४५२,
०६८६८४६६४०१, ०६६६६०४२८६८
ई-मेलः grassrootsmediainitiative@gmail.com

ए.पी. ग्राफ़िक्स, टी-१६ ओखला फ़ेस-२
नई दिल्ली - ११० ०२० द्वारा मुद्रित

सीमित वितरण हेतु ::: मुद्रित प्रतियां-१०००

प्रेस में बहस

नव वर्ष की शुभकामनाओं के साथ ‘चिल्ड्रन प्रेस सर्विस बुलेटिन’ का दूसरा अंक आपके हाथ में है। हम अभारी हैं पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े उन तमाम बुद्धिजीवियों के जिन्होंने हमारी मंशाओं को समझते हुए बच्चों की रचनाओं को अपने पत्र-पत्रिकाओं में स्थान दिया। साथ ही हम उन्हें भी धन्यवाद देना चाहेंगे जिन्होंने कि हमारे प्रयास को सराहा।

हमारी इस पहल के साथ ही एक बहस उठ खड़ी हुई है कि क्या बच्चों को इतने गम्भीर मुद्दों पर लिखना चाहिए और अगर बच्चों ने लिखा है तो उसे अख़बार में स्थान कहां मिलना चाहिए? इस सवाल को हमने मीडिया कर्मियों के पाले में डाल दिया है। इसका जवाब आप पाठकों को देना है। फ़िलहाल हम यही कह सकते हैं कि अगर बच्चों ने इतने गम्भीर व समाज से जुड़े मुद्दों पर लिखा है तो यह उनकी संवेदनशीलता का परिचायक है। क्या बच्चे सिर्फ़ पतंग, भालू, बंदर या अन्य इसी तरह के विषयों पर लिख या पढ़ सकते हैं? गम्भीर या समाज से जुड़े मुद्दों से उनका कोई सरोकार नहीं है?

कई समाचार पत्र व पत्रिकाओं ने बच्चों की रचनाओं को प्रमुखता से स्थान देकर न सिर्फ़ बच्चों की हौसलाअफ़ज़ाई की है, बल्कि हमारी पहल में साथ चलने का वादा भी किया है।

चिल्ड्रन प्रेस सर्विस के इस अंक में भी बाल लेखकों ने सामाजिक, सांस्कृतिक व पर्यावरण से जुड़े मुद्दों को उठाया है। स्वयंसेवी संस्थाओं और मीडिया कर्मियों से हमें अपेक्षा है कि वे चिल्ड्रन प्रेस सर्विस के दूसरे बुलेटिन को भी उचित स्थान देकर हमें सहयोग देंगे।

❑ *संपादक*

Plan
Be a part of it

हमें चांद चाहिए

❑ *प्रवीन शर्मा*

वह ज़माना गुज़र गया जब जन्मदिन पर, कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त होने पर, अथवा खेल-कूद या ऐसे ही अन्य क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान प्राप्त होने पर बच्चे अपने माता-पिता से अलग अलग तरह के उपहारों की मांग करते थे। कोई गर्मियों की छुट्टियों में पर्यटन स्थल पर जाने का टिकिट मांगता था तो कोई अच्छे लेखक की किताब, कोई स्पोर्ट्स किट या सिनेमा हॉल में चलने की फ़रमाइश करता था। अब ज़माना बदल गया है। आज बच्चे छोटे-छोटे अवसरों पर मां-बाप से मंहगे मोबाइल फ़ोन, कम्प्यूटर या बाइक की मांग कर बैठते हैं। और अभिभावक भी उनकी मांग सहजता से पूरी कर देते हैं।

बाज़ारवादी संस्कृति ने हमारे संबंधों या कहें कि सामाजिक ताने-बाने में ऐसी सेंध लगाई है कि संवेदनाएं गौण हो गईं हैं और भौतिकवाद उन पर हावी। कुछ दिन पहले हमारे ताऊ जी के बेटे ने अपना सत्रहवां जन्मदिन मनाया। इस अवसर पर उनकी मांग पूरी करते हुए ताऊ जी ने उन्हें एक मोबाइल फ़ोन उपहार स्वरुप दिया। इस मोबाइल फ़ोन की क़ीमत बाज़ार में लगभग ३ हज़ार रुपये है। ठीक इसी तरह ताऊ जी के बड़े लड़के के जन्मदिन पर ताऊ जी ने उसे बाइक दी थी।

जन्मदिन पर मिलने वाले उपहार इतने मंहगे हैं तो पढ़ाई में अव्वल दर्जा पाने पर तो और भी शानदार उपहार मिलेंगे। ज़िन्दगी में शानदार मुक़ाम हासिल करें, यह हसरत प्रत्येक मां-बाप की होती है। हमारे पड़ौस में रहने वाली एक आंटी से जब मैंने बात की तो उन्होंने अपनी एक अलग ही युक्ति के बारे में मुझे बताया। उन्होंने अपने बेटे से कहा है कि अगर बोर्ड परीक्षा में वह कक्षा में प्रथम स्थान लाऐगा तो उसे डिजिटल कैमरा दिलाऐंगे। हमारी कॉलोनी में ही रहने वाली कीर्ति की मम्मी ने अपने बेटे के सामने बोर्ड परीक्षा में अच्छे अंक लाने पर बाइक देने का वादा किया। जब उनके बेटे ने ७० फीसदी अंक प्राप्त कर लिए तो उन्होंने रुपयों की परवाह किए बिना उसे बाइक दिला दी। यही शर्त उन्होंने अपने छोटे बेटे के सामने भी रखी, लेकिन वह उसे पूरा न कर सका।

यह तो सिक्के का एक पहलू है। वहीं कुछ बच्चे ऐसे भी हैं जिन्हें पढ़ने के लिए न तो अच्छा स्कूल और मनचाही किताबें नसीब होती हैं, ना ही ट्यूशन जैसी सुविधा। उनके लिए ये सारी चीज़े चाँद के माफ़िक होती हैं जिसे वे चाह कर भी नहीं पा सकते। प्रश्न यह है कि इस तरह की शर्तें और वादे बच्चों के भविष्य को कहां ले जा रहे हैं। कुछ अभिभावकों का कहना है कि उपहार पाने के लालच में बच्चे अधिक मेहनत करते हैं। वहीं कुछ अभिभावको से बातचीत करने पर यह बात भी सामने आयी कि बच्चे जो कहें हम उसे पूर नहीं कर सकते।

हमारे घर के पास ही दीपू नाम का लड़का रहता है। दीपू ने जब स्कूल जाना शुरु किया तो घर में कम्प्यूटर की मांग की जोकि पूरी भी हो गई। अपनी मांगो को पूरा होता देख दीपू ने एक दिन अपने घर में हवाई जहाज़ की मांग कर दी। दीपू के माता-पिता बहुत मुश्किल से उसे समझा पाए कि हवाई जहाज़ लेना कोई आसान काम नहीं है।

समय बदल रहा है और समय के अनुसार ही बदल रही हैं बच्चों की तिलिस्मी मांगें और उनका दायरा। इन मांगों और इच्छाओ की पूर्ति ने समाज को दो भागों में बांट दिया है। साथ ही यह आशंका भी सामने खड़ी कर दी है कि आगे चलकर बच्चे अपनी सफलता या उपलब्धियों के बदले ये न कहें कि 'मुझे चांद चाहिए या सितारे'।

● **चिप्रेस**

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***प्रवीन शर्मा*** *दिल्ली के संगम विहार का निवासी है तथा कक्षा ६ का छात्र है ।*

अस्तित्व के लिए संघर्षरत गढ़वाली वाद्ययंत्र

❑ *मोहित ढ्रौंडियाल व लक्ष्मी नौटियाल*

नवगठित राज्य उत्तराखंड की सुरम्य घाटियों के बीच स्थित है गढ़वाल क्षेत्र। आज से लगभग डेढ़-दो दशक पहले तक तीन दर्जन वाद्ययंत्र अपनी सुरीली और कर्णभेदी धुनों से प्रकृति के साथ ताल मिलाते थे, लेकिन वर्तमान में यहां लगभग एक दर्जन वाद्ययंत्र ही अस्तित्व में रह गए हैं। ये वाद्ययंत्र भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं।

देश के अन्य क्षेत्रों की भांति ही गढ़वाल में भी कोई शुभ अथवा विशेष अवसर बिना वाद्ययंत्रों के पूर्ण नहीं माना जाता। ये वाद्ययंत्र एक तरफ़ जहां बजाने वालों की कला व परिपाटी के परिचायक हैं वहीं दूसरी तरफ़ हर्ष व उल्लास का प्रतीक भी। यहां के सामाजिक जीवन में इन यंत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है।

पश्चिमी सभ्यता के बढ़ने प्रभाव व अनुशरण ने गढ़वाली वाद्ययंत्रों के अस्तित्व को भी आघात पहुंचाया है। एक स्थानीय सामाजिक संस्था श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम द्वारा किए गए सर्वेक्षण के निष्कर्ष बताते हैं कि वर्तमान में गढ़वाल क्षेत्र में सिर्फ़ १३ पारम्परिक वाद्ययंत्र ही अस्तित्व में हैं। ये भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। इन १३ वाद्ययंत्रों में ढ़ोल, दमाऊ, रणसिंगा, बिणाई, सिणांई, भंकोदा, डोरा, थाली, हुड़का, मुछंग, मुरली, भांणा और कैसाल शामिल हैं।

शादी-ब्याह हो अथवा त्यौहार या मेला-उत्सव सभी अवसरों पर ये वाद्ययंत्र बजाए जाते हैं। इसके अलावा देवताओं के आह्वान, जागर गीत, चौफला, चांचड़ी, झुमेला व पांडव नृत्य में विशेष तौर पर बजाये जाते हैं। लोक नृत्यों में ढ़ोल-दमाऊ का प्रयोग विशेष तौर पर किया जाता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार रणसिंगा, बिणाई, भंकोरा, सिणांई, आदि वाद्ययंत्रों का प्रयोग राजा-महाराजाओं द्वारा युद्ध के आह्वान के लिए किया जाता था। वहीं मुछंग, मुरली व भाणा, आदि वाद्ययंत्र मनोरंजन के लिए उपयोग में लाऐ जाते हैं।

गढ़वाली वाद्ययंत्रों का प्रयोग प्राचीन काल से सूचना देने के लिए भी किया जाता रहा है। जब एक स्थान से दूसरे स्थान तक सूचना पहुंचाने के लिए आज जैसे संचार के माध्यम नहीं थे तो पहाड़ों के बीच दूर-दूर बसे गावों में ढोल बजाने वाली टोली जाकर सूचना देती थी।

गत डेढ़-दो दशकों में देश के अन्य हिस्सों की तरह ही गढ़वाल में भी पश्चिमी सभ्यता ने अपने पांव पसारे हैं; और लोगों ने इसका अनुशरण करते हुए अपनी पारम्परिक विरासत को बिसरा दिया। यहां के वाद्ययंत्रों के लुप्त होने के पीछे एक और प्रमुख कारण है। पहले जो लोग वाद्ययंत्र बजाते थे उन्हें अन्य लोगों द्वारा उचित सम्मान व पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। ये पारिश्रमिक ही उनकी आजीविका का प्रमुख साधन था। समय के साथ लोगों ने इनके प्रति अपना रवैया बदला। फलस्वरूप वाद्ययंत्र बजाने वालों ने भी अन्य व्यवसाय व रोज़गार के साधनों की तरफ पलायन कर लिया। एक समय जहां लगभग तीन दर्जन वाद्ययंत्रों की आवाज़ें पहाड़ी वादियों में गूंजा करती थीं वहीं आज यह १३ वाद्ययंत्र भी अपना अस्तित्व बचाने की लड़ाई कर रहे हैं।

● **चिप्रेस**

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***मोहित ढ्रौंडियाल*** *उत्तराखंड के रिखोली गांव का निवासी है तथा कक्षा ८ का छात्र है ।*
* ***लक्ष्मी नौटियाल*** *उत्तराखंड के गैरसैण गांव की निवासी है तथा कक्षा १२ की छात्रा है ।*

अपने अधिकारों की पहल - बाल पंचायत

❑ *दीपा झिक्वांण व अजीत कुमार*

हमारे देश में आज भी बाल अधिकारों को गम्भीरता से नहीं लिया जाता। जबकि बाल अधिकारों व उनसे जुड़े मुद्दों पर आज विश्वव्यापी बहस छिड़ी हुई है और इन्हें लेकर विश्व समुदाय चिंतित भी है। अपने अधिकारों को मांगने की पहल के उद्देश्य से उत्तराखण्ड के पहाड़ी इलाक़ों में कुछ जागरूक बच्चों ने संगठन बनाए हैं। इन संगठनों को बाल पंचायत, बाल सभा या बाल संगठन के नाम से जाना जाता है। ये संगठन ग्रामीण स्तर व ब्लॉक स्तर पर ५ से १७ साल के बच्चों की भागीदारी से बने हैं। इन संगठनों की माह अथवा पंद्रह दिन में एक बैठक होती है। बैठक के दौरान बच्चे अपने-अपने गांव/टोले की समस्याओं को रखते हैं। इसके बाद समस्याओं पर सामूहिक विमर्श किया जाता है व उससे निपटने के लिए रणनीति बनाई जाती है। बाल पंचायत के गठन में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव, उपसचिव, कोषाध्यक्ष, उपकोषाध्यक्ष, सांस्कृतिक सचिव, खेल सचिव तथा मंत्री का चुनाव कर उन्हें संबंधित दायित्व सौंपे जाते हैं जिनका कि वे निर्वहिन करते हैं।

बाल पंचायतों द्वारा ग्रामीणों को विभिन्न विषयों के प्रति जागरूक करने के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम व अन्य गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। बाल पंचायत की बैठक में होने वाली कार्यवाही को औपचारिक रूप से रजिस्टर में लिखा जाता है। बाल पंचायतों के अपने सचिवालय हैं। उत्तराखण्ड के चमोली ज़िले के अन्तर्गत आने वाले गैरसैंण क्षेत्र के २३२ गांवों में १७३ बाल पंचायत सक्रिय रूप से काम कर रही हैं। इन गांवों में मुख्य रूप से गैरसैंण, धारगैणं, गैंण, सिलंगी-टल्ली, सिलंगीमल्ली, पज्याणा, मटकोट, पंचाली, मूसो, गांगली, डुग्री, कोठयार, रंगचौंणा, विसराखेत, हरसारी, कुनीगाड, मालकोट लगा सलियाणा, आदि शामिल हैं। बाल पंचायतों द्वारा सफ़ाई अभियान व वृक्षारोपण की गतिविधियों को गांव के बड़े लोगों ने सराहा; और साथ ही उसमें भागीदारी भी दर्ज कराई।

बाल पंचायतों के प्रतिनिधि गांव व क्षेत्र से संबंधित समस्या को लेकर तुरंत सरकारी अधिकारियों के पास भी पहुंच जाते हैं। प्रत्येक बाल संगठन में लगभग ३० बच्चे हैं। बाल पंचायत से जुड़े कुल बच्चों की संख्या ५ हज़ार से अधिक है। बाल पंचायतों के गठन के बाद एक तरफ़ जहां बाल मज़दूरी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई जा रही है वहीं स्कूल न जाने वाले बच्चों को स्कूल भेजने जैसी पहलों को भी अन्जाम दिया जा रहा है। यदि हाल ही में किए गए बाल पंचायतों के उल्लेखनीय कार्यों पर नज़र डालें तो ग्राम मरकन्डे की कुन्ती ने अपने गांव में कई बच्चों को स्कूल भेजने का काम किया। पंचाली की बाल पंचायत ने स्थानीय एस डी एम के पास जाकर अपने गांव की समस्या और बच्चों के जन्मपंजीकरण हेतु कार्ड की मांग कर सभी को कार्ड दिलवाये। इसके अतिरिक्त बाल पंचायतों ने क्षेत्र में कई ऐसे कार्य किए हैं जो गांव व क्षेत्र के विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। साथ ही बाल पंचायत को एक पहचान भी मिली है।

● चिप्रेस

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* *दीपा झिक्वांण उत्तराखण्ड के सिलंगी गांव की निवासी है ।*
* *अजीत कुमार उत्तराखण्ड के मालकोट लगा सलियाणा गांव का निवासी है तथा कक्षा ११ का छात्र है ।*

मज़दूरी में भविष्य खोजते नौनिहाल

❑ *दीपक शाह व लक्ष्मी पंवार*

नौ वर्षीय लखेन्द्र ने खेलने-कूदने और पढ़ने-लिखने की नन्हीं उम्र में झूठे बर्तनों की टोकरी को अपना नसीब बना लिया और किताबों से नाता तोड़ परिवार की ज़िम्मेदारी अपने सिर ले ली। लगभग पांच वर्ष पहले लखेन्द्र के पिता तोताराम की ३२ वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई। तोताराम एक बिस्कुट फ़ैक्टरी में काम करते थे और उसी से उनके परिवार का पालन-पोषण होता था। पिता की मृत्यु के बाद लखेन्द्र की मां खिमुली देवी और उसके चार छोटे भाइयों की ज़िम्मेदारी लखेन्द्र पर आ गई। घर में फ़ाक़े पड़ने लगे। आख़िर लखेन्द्र ने निर्णय लिया कि वह अपनी पढ़ाई छोड़ नौकरी करेगा और छोटे भाइयों की पढ़ाई जारी रखेगा। लखेन्द्र बताता है, "मेरे पिता की मृत्यु टीबी (क्षयरोग) से हुई। उन्हें समय पर उचित इलाज न मिल सका। पिता की मृत्यु के बाद मैंने गैरसैंण के एक होटल में बर्तन साफ़ करने का काम शुरू कर दिया। जो अतिरिक्त समय मिलता उसमें मैं पत्थर तोड़ता। इस तरह मुझे जो मज़दूरी मिलती उससे मेरे परिवार का भरण-पोषण होने लगा"।

लखेन्द्र की कहानी कोई इकलौती कहानी नहीं है। लखेन्द्र की तरह ही हमारे देश के लाखों बच्चे अपने बचपन से बेख़बर परिवार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बाल मज़दूरी का रास्ता अपनाते हैं। बाल मज़दूरी को एक गम्भीर समस्या मानते हुए उत्तराखण्ड के चमोली ज़िले के गैरसैंण ब्लॉक में बाल पंचायतों का गठन किया जा रहा है। ये बाल पंचायतें बच्चों का ऐसा संगठन हैं जो बाल अधिकारों व बच्चों से जुड़े अन्य मुद्दों पर अपनी आवाज़ उठा रही हैं।

गैरसैंण क्षेत्र के कुनेलीलगा सलियाणा की भावना ने भी माता-पिता की अचानक मृत्यु के बाद मज़दूरी करने का रास्ता अपनाया। अपनी कहानी स्वयं बताते हुए कहती है, "मैं मज़दूरी का काम करती थी। एक दिन बाल पंचायत कुनेलीलगा सलियाणा की अध्यक्ष सीमा धिमने मेरे पास आईं। उन्होंने मुझे समझाया कि अभी मेरी उम्र पढ़ने-लिखने की है ना कि मज़दूरी करने की। उन्होंने मेरी व मेरे भाई-बहनों की शिक्षा आगे बढ़ाने में सहयोग देने का आश्वासन भी दिया। इस तरह मैं बाल पंचायत से जुड़ गई। बाल पंचायत के सहयोग से मैंने अपनी पढ़ाई जारी रखी व सिलाई का काम सीखा जिससे घर का ख़र्चा चलता था।

गढ़वाल के पहाड़ी क्षेत्रों में ४० फ़ीसदी बच्चे ऐसे हैं जो पढ़ाई छोड़ किसी न किसी तरह के श्रम में संलग्न हैं। इनमें से २० प्रतिशत बाल मज़दूर वे हैं जिनके माता-पिता की मृत्यु असमय हो गई है। उनके भाइयों-बहनों या स्वयं के भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी उन पर आ गई है। वहीं २० प्रतिशत बाल मज़दूर ऐसे हैं जिनके माता-पिता कार्य करने के योग्य नहीं रहते और उन्हें परिवार का बोझ उठाना पड़ता है। गढ़वाल क्षेत्र में बाल मज़दूरों की लगातार बढ़ती संख्या के प्रति सरकार के उदासीन रवैये को बाल पंचायत ने गम्भीरता से लिया। बाल पंचायत प्रतिनिधियों ने विभिन्न माध्यमों से आला अफ़सरों को इस समस्या से अवगत कराया। फलस्वरूप अब सरकार ने बाल श्रमिकों की गणना का कार्य शुरू किया है।

● चिप्रेस

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***दीपक शाह*** *उत्तराखण्ड के धुनारघाट गांव का निवासी है ।*

* ***लक्ष्मी पंवार*** *उत्तराखण्ड के जांकीधार गांव की निवासी है ।*

Plan
Be a part of it

उम्र तेरह की, फेरे सात...

❑ *अरविंद वर्मा*

एक तरफ़ तो हमारा देश २१वीं सदी में प्रवेश करने के साथ ही आगामी एक-डेढ़ दशक में विकासशील देश से विकसित देश की श्रेणी में शामिल होने का लक्ष्य निर्धारित किए हुए है, वहीं दूसरी ओर कुछ कुप्रथाएं समाज में दीमक की तरह लग कर उसे खोखला कर रही हैं। बाल विवाह ऐसी ही एक कुप्रथा है। इसे समाप्त करने के लिए कई आंदोलन व अभियान चले, कई समाज सेवियों ने व्यापक स्तर पर प्रयास किए। बावजूद इन सबके यह कुप्रथा विद्यमान है।

शहरी क्षेत्रों की यदि बात करें तो वहां भी बाल विवाहों का प्रतिशत ख़ासा है। फिर ग्रामीण व क़स्बाई क्षत्रों की तो बात ही क्या की जाए? हालांकि बाल विवाह को एक सामाजिक बुराई मानते हुए इस पर रोक लगाने के लिए क़ानून भी बना है। आइऐ पहले यह जानें कि बाल विवाह है क्या? हमारे देश में क़ानून के अनुसार विवाह के समय लड़के की न्यूनतम उम्र २१ वर्ष व लड़की की न्यूनतम उम्र १८ साल निर्धारित की गई है। इससे कम उम्र में शादी के लिए लड़का व लड़की दोनों ही शारीरिक व मानसिक रूप से तैयार नहीं होते।

हमारे समाज में कन्या भ्रूण हत्या ग्रामीण क्षेत्रों से ज़्यादा शहरी क्षेत्रों में हो रही है। इसके पीछे मुख्य कारण है अल्ट्रासाउण्ड जैसी आधुनिक तकनीक का दुरुपयोग। सुनने में भले ही आश्चर्यजनक लगे लेकिन यह एक कड़वा सच है कि दिल्ली में ३५ फ़ीसदी लड़कियों की शादी १८ वर्ष से पहले ही कर दी जाती है। वहीं उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखंड, राजस्थान, उत्तराखंड और मध्यप्रदेश से प्राप्त आंकड़ों के मुताबिक़ देश की हर चौथी लड़की १५ वर्ष से कम आयु में ही शादी के बंधन में बांध दी जाती है। एक सरकारी सर्वे के निष्कर्ष बताते हैं कि गोवा, केरल, मिज़ोरम, मणिपुर और नागालैंड राज्यों में बाल विवाह की औसत दर कम है। बाक़ी सभी राज्यों में यह बहुत अधिक है। सामान्यतः देखने में आता है कि घर में लड़की के जन्म होने के साथ ही उसे बोझ माना जाने लगता है और उसे पढ़ाई-लिखाई, स्वास्थ्य व अन्य बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराने की बजाए उसकी शादी की चिंता शुरू हो जाती है। यह हालात ग्रामीण क्षेत्रों में भी हैं और शहरी क्षेत्रों में भी।

जनसंचार माध्यमों, सरकारी व ग़ैर-सरकारी संगठनों तथा बाल विवाह निषेध क़ानूनों के हस्तक्षेप से कुछ सकारात्मक परिणाम गत एक-दो दशकों में देखने को मिले हैं। फिर भी स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। आंकड़ों के अनुसार १९८१-१९८६ के बीच हुई शादियों में लड़कियों की औसत उम्र १८ साल थी। १९८६-१९९१ के बीच हुई शादियों में लड़कियों की उम्र का औसत और कम हो गया। वहीं १९९६ व उसके बाद यह गिरावट जारी रही और एक बार फिर से बाल विवाह ने ज़ोर पकड़ा लिया है। सम्पन्न राज्य पंजाब में १९९८-२००६ के बीच बाल विवाह का प्रतिशत काफ़ी ज़्यादा रहा है।

बाल विवाह में मुख्यरूप से निशाने पर लड़कियां ही रहती हैं। अधिकांश अभिभावकों की सोच रहती है कि लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने की बजाय सिलाई-कढ़ाई व अन्य घरेलू कामों में निपुण बनाकर उनकी शादी कर दी जाए। कम उम्र में शादी करने से वर व वधू दोनों का ही सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। फलस्वरूप उन्हें उम्र भर परेशानियों का सामना करना ही पड़ता है। चिकित्सकों के अनुसार कम उम्र में शादी होने से दम्पत्ति से पैदा संतान शारीरिक और मानसिक रूप से कमज़ोर होती है। साथ ही लड़की के कम उम्र में मां बनने से जच्चा और बच्चा दोनों को जान का ख़तरा होता है। राजधानी दिल्ली के दक्षिणी क्षेत्र संगम विहार में रहने वाली श्रीमती किरन का इस संदर्भ में कहना है, “हम लड़कियों को ज़्यादा पढ़ा-लिखा भी दें तो क्या? आख़िर उन्हें जाना तो दूसरों के घर ही है”। वहीं एक अन्य महिला श्रीमती विमला देवी कहती हैं, “ज़्यादा पढ़-लिख कर लड़कियां कुछ फ़ैसले स्वयं ले लेती हैं जो न परिवार के हित में होते हैं और न ही सामाजिक मर्यादा मैं”। बदरपुर क्षेत्र में रहने वाली शिवखरी देवी अपने अनुभव का ज़िक्र करते हुए कहती हैं, “मेरी शादी बचपन में ही कर दी गई थी। अनजान घर में आकर छोटी उम्र में ना तो मैं अपने अधिकारों के लिए लड़ सकती थी और न ही मुझे यहां के तौर-तरीक़े पता थे। फलस्वरूप बचपन से ही मेरे ऊपर तमाम ज़िम्मेदारियों से तनाव बढ़ गयौ”। बदरपुर में ही रहने वाली शबनम के अनुसार बाल विवाह एक क़ानूनी व सामाजिक जुर्म है। अतः इस पर सख़्ती से रोक लगनी चाहिए। दुनिया के

अन्य देशों में विवाह की औसत उम्र को देखें तो भारत में १६ वर्ष, बंगलादेश में भी १६ वर्ष, ब्राज़ील, चीन व इन्डोनेशिया में २३ वर्ष, अमेरिका, पाकिस्तान व नाइजीरिया में २१ वर्ष निर्धारित है। भारत में बाल विवाह को बढ़ावा देने वाले कारणों में अशिक्षा व ग़रीबी मुख्य हैं जबकि रूढ़िवादी सोच व भेदभाव का नज़रिया भी इसके लिए ज़िम्मेदार हैं।

● **चिप्रेस**

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***अरविंद वर्मा*** *दल्ली के संगम विहार का निवासी है तथा कक्षा ११ का छात्र है ।*

पाण्डव नृत्यः गढ़वाल की सांस्कृतिक धरोहर

❑ *वन्दना सिरस्वाल व गबर रावत*

किसी भी राष्ट्र, प्रदेश अथवा क्षेत्र की पहचान वहां की संस्कृति से की जाती है। संस्कृति अपने आप में एक व्यापक शब्द है जिसमें स्थानीय बोली, भाषा, त्यौहार, मेला-महोत्सव, रहन-सहन, खानपान, वेशभूषा, रीति-रिवाज़ों और नृत्य तथा आस्थाओं का समावेश रहता है। प्रत्येक राष्ट्र, राज्य व क्षेत्र की भिन्न-भिन्न संस्कृति होती है। इसकी झलक हमें वहां के लोगों के व्यवहार में भी देखने को मिलती है।

उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र के चमोली जिले के अंर्तगत आता है गैरसैंण ब्लॉक। गैरसैंण ब्लॉक के लगभग २२५ ज़्यादा गांव उत्तराखण्ड की प्राकृतिक खूबसूरती का प्रतिनिधित्व करते ही हैं; साथ ही वहां के कुछ ख़ास नृत्य जैसे पार्ती, अष्टबली, भण्डारा और पाण्डव नृत्य के चलते क्षेत्र को अलग पहचान भी दिलाते हैं। आधा दर्जन से अधिक नृत्यों में पाण्डव नृत्य अधिक महत्वपूर्ण है जो स्थानीय जनता के मनोरंजन का प्रमुख साधन है। इस नृत्य को स्थानीय कलाकार प्रस्तुत करते हैं। पाण्डव नृत्य लोककला का परिचायक तो है ही, साथ ही इससे क्षेत्रीय लोगों की आस्थाएं भी जुड़ी हैं। इस दस दिवसीय नृत्य का आयोजन में नवम्बर माह में किया जाता है। रात को होने वाले इस नृत्य में स्थानीय लोग काफ़ी संख्या में उपस्थित होते हैं। नवम्बर माह में यहां खेती से संबंधित ज़्यादा काम नहीं होता, वहीं रातें भी बड़ी होने लगती हैं। अतः यह नृत्य स्थानीय लोगों के मनोरंजन का प्रमुख साधन बन जाता है।

पाण्डव नृत्य में मुख्य रूप से अर्जुन, नागार्जुन, भीम, बवृक, युधिष्ठिर, कृष्ण, फुलवारी, पैया वाला, द्रोपदी, बसन्ता और कुन्ती मुख्य पात्र होते हैं। यहां उल्लेखनीय है कि पैया एक वृक्ष का स्थानीय नाम है। गढ़वाल में शुभ अवसरों पर इसकी पूजा की जाती है। पाण्डव नृत्य की पृष्ठभूमि में यहां की लोककथाओं के अनुसार जब भगवान कृष्ण नागलोक गए तो वहां से अपने साथ पैया का वृक्ष लेकर आये थे। इससे पूर्व पृथ्वी पर पैया के वृक्ष का अस्तित्व नहीं था। नृत्य के दौरान एक पात्र इस वृक्ष की टहनियों को लेकर वृक्ष की भूमिका में विद्यमान रहता है। इस नृत्य में शामिल होने वाले पात्रों की अपनी विशिष्ट वेशभूषा व अलंकार होते हैं। नृत्य में शामिल पुरुष पात्र सफ़ेद घाघरा, कुर्ता और सफ़ेद चूड़ीदार पाजामा धारण किए रहते हैं। इसके अतिरिक्त सिर पर सफ़ेद टोपी, कंधे पर दो चुनरियां और एक पटका ओढ़ते हैं। नृत्य की महिला पात्र काला पाखुला, काला आंगड़ा (ब्लाउज़) व सिर पर सफ़ेद शॉल धारण करती है। पात्र सिर पर मांग टीका, कानों में मुरकुले व कर्णफूल, गले में गुलोबन्द, हम्टौला और चन्द्रहार, नाक में नथनी व बुलाक, हाथों में चूड़ियां, कंगन व पौंची, अंगुलियों में मुंदड़ी, कमर में कमरबन्द और पैरों में पाज़ेब (पायल) व माथे पर लाल टीका आदि आभूषण धारण कर नृत्य करती हैं। नृत्य के दौरान सभी पात्रों के हाथों में उनके हथियार रहते हैं। जैसे अर्जुन-नागार्जुन धनुष-बाण, भीम-बवृक गदा, युधिष्ठिर खूंखरी, कृष्ण चक्र, फुलावारी फूल, पैयावाला पैया वृक्ष की टहनियां लिये रहते हैं। वहीं नृत्य की प्रमुख महिला द्रोपदी हाथ में चौंरगाय की पूंछ लेकर नाचती है।

यहां द्रोपदी का नृत्य महाभारत कथा के उस दृष्य का चित्रण करता है जब पांडव और कौरवों के बीच खेले गए जुए में पाण्डव सब कुछ हार गए थे। अंत में उन्होंने द्रोपदी को भी दाव पे लगा दिया। इसी क्रम में दुशासन द्रोपदी के केश पकड़ कर भरी सभा में लाता है। इस अपमान का बदला लेने के लिए द्रोपदी ने प्रतिज्ञा की कि वह अपने केश तभी बांधेगी जब अपने केशों को दुशासन के लहु से धो लेगी। नृत्य में द्रोपदी का हाथ में पूंछ लेकर नाचना इसी घटना का प्रतीक माना जाता है।

नृत्य की शुरुआत में सभी पात्र एक गोल घेरा बनाकर खड़े हो जाते हैं। तत्पश्चात पुजारी द्वारा मंत्र पढ़ने के साथ ही ढ़ोल-दमाऊ के साथ अर्जुन-नागार्जुन का नृत्य होता है। इसी क्रम में अन्य पात्र नृत्य करते हैं। यह नृत्य पंवाड़ा गीतों पर आधारित रहता है। गीतों के माध्यम से महाभारत कथा प्रस्तुत की जाती है। गीतों के साथ ढ़ोल-दमाऊ का तालमेल बैठाया जाता है। यदि गीतों में द्यूत क्रीड़ा का उल्लेख किया जाता है तो ढ़ोल-दमाऊ उसी ताल पर बजते हैं और सभी नृत्यकार गोलाई में खडे होकर तीन क़दम बाहर और तीन क़दम भीतर की ओर ले जाकर नृत्य करते हैं। वहीं युद्ध वाले गीत में सभी पात्र थिरककर वीरतापूर्ण भाव-भंगिमाओं का प्रदर्शन करते हैं।

नृत्य का समापन दसवें दिन एक मेले के रूप में होता है। इस मेले को देखने दूर-दूर से लोग आते हैं। अंतिम दिन एक बकरे को लाया जाता है जिसे कि अर्जुन द्वारा मारा जाता है। बकरे को मरता देख कुछ समय के लिए अर्जुन भी मूर्छित होने का अभिनय करता है। अर्जुन की मूर्छा ही समापन की घोषणा होती है। स्थानीय लोगों का मत है कि शास्त्रों के अनुसार इस नृत्य को बारह साल में एक बार होना चाहिए। शायद कुछ समय पूर्व ऐसे ही होता भी था; लेकिन अब हर गांव के लोग अपनी सुविधा व सहमति के अनुसार इसका आयोजन करते हैं। नृत्य के बारह साल में एक बार होने के पीछे मान्यता है कि जुए में सब कुछ हारने के बाद पांडवों को बारह वर्ष का बनवास हुआ। उसके पश्चात कौरव-पांडव का नृत्य हुआ। अतः इस बीच का समय उन्होंने वनवास के रूप में व्यतीत किया।

अंत में कहा जा सकता है कि अपनी इस सांस्कृतिक धरोहर को बचाने के लिए गढ़वाल क्षेत्र के लोग आज भी सक्रिय हैं।

● **चिप्रेस**

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***वन्दना सिरस्वाल*** *उत्तराखण्ड के डुंगरी गांव की निवासी है ।*

* ***गबर रावत*** *उत्तराखण्ड के ग्वाड मल्ला गांव का निवासी है ।*

पढ़ेंगे लिखेंगे बनेंगे नवाब

❑ *सुखदेव यादव*

शिक्षा एक ऐसी अमूल्य चीज़ है जो व्यक्ति के साथ-साथ समाज का विकास करती है। शिक्षा के बिना हम न तो अपने अधिकारों से परिचित हो पाते हैं और न ही अच्छे-बुरे में फ़र्क़ कर पाते हैं। हम देखते हैं कि जब बात शिक्षा की आती है तो हमारा समाज दोहरी मानसिकता अपनाता है। एक तरफ़ जहां लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता है वहीं दूसरी ओर लड़कों को शिक्षा के लिए तमाम तरह की सुविधाएं मुहैया कराई जाती हैं। हम भूल जाते हैं कि एक लड़की के शिक्षित होने का लाभ पूरे परिवार को मिलता है। अतः जिस तरह हम लड़के को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराते हैं उसी तरह हमें बिना किसी भेदभाव के लड़कियों को भी पढ़ाना चाहिए।

उत्तरप्रदेश के महाराजगंज जिले के अन्तर्गत आने वाले लक्ष्मीपुर गांव में रास्ता सही न होने से लड़के-लड़कियां नियमित स्कूल नहीं जा पाते हैं। वहीं बरसात के दिनों में तो हालत और भी ख़राब हो जाती है। गांव में स्कूल इतनी दूर है कि लड़कियों की पढ़ाई का स्तर ना के बराबर है। स्कूल तक पहुंचने का रास्ता इतना ख़राब है कि लड़के भी मुश्किल से पहुंच पाते हैं। गांव में स्कूल खुलवाने और सड़क सही करवाने के लिए ग्रामीणों ने संबंधित विभागों को कई अर्जियां दीं, लेकिन नतीजा सिफ़र रहा।

गांव में स्कूल न होने के कारण नौनिहाल शुरूआती शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। फलस्वरूप उनकी नींव कमज़ोर रहती है। ये नौनिहाल ही कल के भारत का भविष्य हैं। अतः हमें शिक्षा के महत्व को समझते हुए बिना किसी जाति व लिंग भेदभाव के अवसर उपलब्ध कराने होंगे।

● **चिप्रेस**

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***सुखदेव यादव*** *उत्तरप्रदेश के लक्ष्मीपुर गांव का निवासी है ।*

पर्यावरण असंतुलन का बढ़ता खतरा

संजय कुमार जायसवाल

पर्यावरण असंतुलन का ख़तरा लगातार बढ़ता जा रहा है। यह चिंता किसी एक व्यक्ति या राष्ट्र की नहीं बल्कि इसके लिए हम सब सामूहिक रूप से ज़िम्मेदार हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम लगातार प्रकृति का दोहन कर रहे हैं। बदले में प्रकृति के प्रति ज़िम्मेदारियों से विमुख होते जा रहे हैं। हम अपनी आवश्यकता के लिए जंगल के जंगल साफ़ करते जा रहे हैं लेकिन बदले में एक भी पेड़ लगाने की ज़िम्मेदारी नहीं समझते। जंगलो की लगातार हो रही कटाई ने हमारे पर्यावरण के साथ-साथ रितु चक्र को भी प्रभावित किया है। अब ना तो वर्षा रितु में पहले जैसी वर्षा होती है, और न ही सर्दियों में पहले जैसी ठंड पड़ती है। फलस्वरूप कृषि व्यवस्था भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रही है। यदि गत दो-तीन दशकों की कृषि व्यवस्था पर हम दृष्टि डालें तो हमें देखने को मिलता है कि किसी साल वर्षा समय पर न होने से फ़सल चौपट हो गईं, तो किसी साल वर्षा ने फ़सल पर क़हर ढाया। सूखा और बाढ़ तो जैसे किसान के जीवन का हिस्सा बन गए हैं। ये प्राकृतिक आपदाएं पर्यावरण असंतुलन को बढ़ावा दे रही हैं।

नेपाल के सीमावर्ती उत्तर प्रदेश के महाराजगंज ज़िले के आसपास के क्षेत्रों में भी वनों की कटाई ज़ोरों पर है। वन माफ़िया द्वारा ज़िले के नौतनवा क्षेत्र में गत एक वर्ष में बहुत सा जंगल साफ़ कर दिया है इसमें से मुख्य रूप से शीशम, के वृक्षों की कटाई की जा रही है। ज़िले के हरदीडाली व खनुआ क्षेत्र में भी पेड़ों की कटाई ज़ोरों पर हो रही है। इसमें गांव के लोगों के साथ-साथ माफ़िया भी शामिल है। वन विभाग के स्थानीय अधिकारी राम सूरत के अनुसान वनों को बचाने की ज़िम्मेदारी हम सब की है और इसे हमें सांझे मंच पर आकर निभाना होगा।

● चिप्रेस

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***संजय कुमार जायसवाल*** *उत्तरप्रदेश के नौतनवा गांव का निवासी है ।*

यह कैसा गेम?

❑ *राहुल कुमार तोमर*

आजकल बच्चों और टीन एजर्स में वीडियो गेम्स खेलने का क्रेज़ बढ़ता जा रहा है। बढ़ते क्रेज़ के साथ ही इसके अच्छे-बुरे नतीजों को लेकर बहस भी गर्म हो गई है। वीडियो गेम्स को खेलने वाले दीवाने तो इसके बुरे नतीजों से बेपरवाह हैं, विशेषज्ञों की राय में ऐसे गेम्स के प्रति बढ़ती दीवानगी ख़तरनाक हो सकती है।

अगर आप मोटर स्पोर्टस के शौकीन हैं तो कार रेस में भाग ले सकते हैं। इस रेस में आप कार चलाते हुए दूसरी कार को ओवरटेक तो कर ही सकते हैं, साथ ही आपको किसी को भी रौंदने की छूट भी रहती है। बाइक रेस में बाइक चालक तेज़ रफ़्तार से जाते हुए हाथ में तलवार लेकर किसी का सिर धड़ से अलग कर सकता है तो किसी को व्हील चेयर से लुढ़का सकता है। रोमांच और बढ़ जाता है जब आप किसी लड़की को किडनेप कर उस पर तरह-तरह के ज़ुल्म ढ़ा सकते हैं। यह बस सुनने या करने में भले ही नामुमकिन या ख़तरनाक लगे, लकिन जब वीडियो गेम्स की कमान आपके हाथों में है तो कुछ भी सम्भव है।

इसके दूरगामी दुष्परिणामों को देखते हुए यूरोपीय संघ गम्भीर हुआ है। और उसने इस तरह के ख़तरनाक गेम्स को बच्चों तक न पहुंच पाने के लिए प्रतिबंध लगाने पर विचार किया है। नम्रता देव जो विगत लगभग पांच वर्षों से वीडियो गेम्स खेल रही है उसका कहना है कि यह तो मनोरंजन का एक साधन है। इससे खेलने वालों की सोच पर कोई प्रभाव पड़ता है, मैं ऐसा नहीं मानती। वे कहती हैं कि जब टीवी पर इतनी हिंसा दिखाई जाती है तो फिर वीडियो गेम तो एक खेल भर है। वीडियो गेम खेलने वालों को इस तरह की बातें व पाबंदी बहुत अखरती हैं। पिछले लगभग ६ सालों से वीडियो गेम खेल रहे २० वर्षीय राज बताते हैं कि वीडियो गेम्स में रोमांच होता है न कि अश्लीलता। मार्केट में आने से पहले गेम्स को सेंसर करने की प्रक्रिया रहती है, इसी आधार पर गेम्स की रेटिंग भी की जाती है। ख़तरनाक वीडियो गेम से प्रेरित होकर बच्चे कोई करतब न करें इसके लिए गेम्स की पैकिंग पर पेरेंट्स के लिए कुछ चेतावनी भी लिखी होती हैं। कंपनी यह सोचकर गाइडलाइन छापती है कि अभिभावक इनका पालन करेंगे, लेकिन अभिभावकों के लिए ये गाइडलाइन सिर्फ़ एक औपचारिकता रहती है। ६ वर्षीय केशव की मां मीरा शर्मा का कहना है कि वीडियो गेम्स ख़रीदते वक़्त वह उसके पैकेज पर लिखी तमाम जानकारी पढ़ती हैं। अधिकांश पैकेज पर लिखा रहता है 'टीन एजर्स के लिए'। लेकिन छोटे बच्चों को भी रोका नहीं जा सकता। दो टीन एजर्स की मां सपना गुहा भी इस से सहमत हैं। वीडियो गेम्स की दुकानें महानगरों से लेकर ज़िला व क़स्बाई क्षेत्रों की गलियों व कूचों में खुली हैं। ये दुकानें अप्रत्यक्ष रूप से जुए जैसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती हैं।

विशेषज्ञ के अनुसार वीडियो गेम्स बच्चों की मनोवृत्ति को हिंसात्मक बना रहे हैं। वे इतने नज़दीक व एकाग्र चित होकर इसे खेलते हैं कि उनकी आंखों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। एक अन्य विशेषज्ञ के अनुसार वीडियो गेम की आवाज़ें बच्चों के कानों की सुनने की क्षमता को प्रभावित करती हैं। वीडियो गेम खेलने के लिए अब यह भी ज़रूरी नहीं कि दुकान पर ही जाया जाए, यह घर पर टीवी सेट व कम्प्यूटर पर भी खेला जा सकता है। वीडियो गेम के बढ़ते क्रेज़ ने बच्चों व टीन एजर्स की पढ़ाई में रुची को भी प्रभावित किया है।

● **चिप्रेस**

नोटः इस सामग्री का उपयोग होने पर प्रकाशित कतरन कृपया अवश्य भेजें ।

* ***राहुल कुमार तोमर*** *दिल्ली के संगम विहार का निवासी है तथा कक्षा ८ का छात्र है ।*

Plan
Be a part of it